International Research Journal of Humanities, Language and Literature
ISSN: (2394-1642)
Impact Factor 6.972 Volume 10, Issue 4, April 2023
Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
Website-www.aarf.asia, Email : editoraarf@gmail.com

कमलेश्वर की कहानियों में बदलता आर्थिक परिवेश

हरीश कुमार

शोधार्थी, एम0पी0जी0 कॉलेज मसूरी देहरादून (उत्तराखण्ड)

शोध सार – आज व्यक्ति हर दृष्टि से असहाय है और उसकी असहाय अवस्था का कारण अर्थ संकट है। आर्थिक सुदृढ़ता व्यक्ति को हतोत्साहित नहीं होने देती। भौतिक मूल्य अर्थ से सम्बन्धित हैं और ये नैतिक मूल्यों को क्षीण कर रहे हैं। व्यक्ति के टूटने का एक बड़ा कारण आर्थिक स्थिति है। 'राजा निरबंसिया' का जगपती अपनी पत्नी को इसी आर्थिकता के चलते एकतरह से बचन सिंह को बेच देता है। इस तरह स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय जन जीवन में आर्थिक परिवेश में भी पर्याप्त बदलाव आया है। व्यक्ति अर्थ के प्रति सचेत हुआ और उसने अर्थ प्राप्ति के लिए अधिकाधिक प्रयत्न करना शुरु किया है। निष्कर्षतः कमलेश्वर की कहानियाँ आज के आर्थिक विषमताओं से जूझते व्यक्ति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती है।

"जीवन का आधार भौतिक अथवा आर्थिक है।"[1] अर्थ जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। इसे अर्जित करने के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता है। इस पुरुषार्थ को शुचिता पर नीति शास्त्र का ध्यान कम ही गया है। अर्थ शुचिता के सम्बन्ध में यह कथन उचित ही है "यो अर्थ शुचिः'' अर्थात् जो अर्थार्जन की दृष्टि से पवित्र है वास्तव में पवित्र है। साम्यवाद अर्थार्जन की स्थिति योग्यता के अनुसार काम और आवश्यकतानुसार दाम को मानता है। इस स्थिति में शोषण की स्थिति नहीं रहती। आर्थिक शोषण का प्रभाव पारिवारिक जवीन पर पूर्णतः पड़ता है। पारिवारिक सुख–शान्ति, नैतिकता आदि बहुत हद तक अर्थ की धूरी पर चक्कर काटे हैं।

किसी समय अवश्य हमारे जीवन का यह एक मूल्य रहा था कि घर का पुरुष चाहे वह एक रुपया कमा कर लाये, उससे परिवार का एक धर्म बनता है। परम्पराएँ और संस्कार बनते

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

हैं। स्त्री का धन अस्पृश्य है। उससे परिवार में कुसंस्कार जन्म लेते हैं आज यह जीवन मूल्य नितांत अर्थहीन हो चुका है। आज के युग में स्त्री हो या पुरुष उनके पारस्परिक सम्बंध, परिवार तथा समाज में उनकी स्थिति पर निर्भर करती है। अगर पत्नी पति के छह गुना कमाती है तो उससे छह गुना सम्मान पाने की अधिकारिणी है। ऐसी स्थिति में पति का अर्थ उसके लिए केवल इतना रह जाता है जिसकी आड़ में वह समाज को धोखा देकर अपनी पोजीशन के किसी भी व्यक्ति के साथ सम्बन्ध रख सकती है।

'भटके हुए लोग' का हंसराज भ्रष्टतंत्र में आर्थिक संकट को झेलता हुआ 'बेकार आदमी' में प्रकाश और वी. सहाय के रूप में अस्तित्व के संकट में जूझता है। 'अपने देश के लोग' में वह स्वार्थान्ध शासकों द्वारा गुलाम बनाया जाता है और 'बयान' में गुलाम न बन पाने के कारण उसे अपना ही अस्तित्व खत्म करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। लेकिन जोखिम में वह आत्महत्या भी नहीं कर पाता। बल्कि पल–पल मौत को जीने के लिए विवश होता हुआ अन्त में भयावह स्थितियों के सम्मुख खड़ा है। 'जोखिम' का नायक व्यापक भारतीय फलन पर सताये हुए साधनहीन आदमी का प्रतीक बनकर हमारे सामने आता है। इस प्रकार जनतंत्र में भी दमन का चक्र भी चलता रहता है। जोखिम कहानी में आर्थिक विडम्बना को बड़े मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया गया है– "मैं कहाँ से काम शुरु करूँ! या संघर्ष शुरु करूँ? कहाँ से जहाँ बताइए–जाकर काम करने लगूँ। सड़क खोदने लगूँ या अस्पताल में जाकर मरीजों की खून सनी पट्टियाँ साफ करने लगूँ– या गोदी पर जाकर गाँठें उठाने लगूँ या लड़कियों के लिए आदमी तलाश करके लाने लगूँ या शराब पहुँचाने लगूँ..... या नरीमन पाइंट पर खड़े होकर दोनों हाथ आसमान की तरफ उठाकर चीख पड़ूँ क्या करूँ?

योगी राव की तरह पानी पर चलकर दिखाने का काई पाखण्ड रचूँ? या उस जवान साधु की तरह किसी सेठी की बीवी को लेकर भाग जाऊँ..... या चने खाते हुए इस निरीह से मजदूरनुमा आदमी के तमाचा मार दूँ?"[2]

परम्परागत पारिवारिक मूल्यों के सन्दर्भ में पारिवारिक विघटन की कहानियों के अलावा कमलेश्वर के पास पारिवारिक विघटन का एक और महत्वपूर्ण सन्दर्भ मिलता है। वह है परिवारों पर आया आर्थिक संकट। आर्थिक संकट से जूझते परिवारों में आज परिवार के किसी निकम्मे

सदस्य के लिए कोई सम्मानजनक स्थिति नहीं बची है। 'दुनिया बहुत बड़ी है' की अन्नपूर्णा भी अपने परिवार के लिए एक निकम्मी चीज बनकर रह जाती है। पति की मृत्यु के बाद जब वह देवर के परिवार में रहने लग जाती है, तब उसे बोझ समझकर वहन किया जाता है। तीस साल तक अपने ही परिवार में तन और मन दोनों को खपा देने के बावजूद वह उस परिवार का अंग नहीं बन पाती। उसके मन में मोह है, परिवार से जुड़ पाने की इच्छा है, परिवार की वह सार्थक इकाई बनाना चाहती है लेकिन अर्थाभाव ऐसा नहीं करने देता। "और वह बैठी सोचती रह जाती थी– तीस बरस सह दिया। यह तो सही है, पर इन तीस बरसों में भी वह इस घर की कुछ नहीं बन पाई, मन का कोई रिश्ता नहीं जुड़ पाया। यहाँ कोई भी ऐसा नहीं था, जिससे सुनकर मन का दुख–सुख कह लेती। आधी रात में किसी को जगाकर छटपटाते उस मन की बातें बाँटती। किससे कहती कि देवियों के दर्शन करने का मन है और एक रुपये की जरूरत है? किसे बताती कि धोतियाँ चिथड़ा हो गई हैं.. आँखों से अब अच्छी तरह दिखायी नहीं पड़ता...।"[3]

'दूसरे' कहानी का आर्थिक संकट परिवार को 'पारिवारिक इकाई' के स्वरूप से वंचित कर देता है। इस अर्थ में यहाँ परिवार की व्यावहारिक सत्ता ही समाप्त हो चुकी है। क्योंकि किस भूमिका के आधार पर परिवार तक सुगठित इकाई के रूप में स्थिर होता है। वह भूमिका ही अपने स्थान से हिल गयी है। यहाँ माता–पिता केवल जन्मदाता बनकर रह गये हैं। बच्चों को जन्म देने के अलावा वे उनके लिए कुछ नहीं कर पा रहे हैं। एक आर्थिक विपन्नता से ग्रसित परिवार वह लगते छीटे देखिए– "अभी तो सिर्फ रहम पर पूरे घर की जिन्दगी बीत रही है। दुकान का मालिक अगर पिता जी को बुढ़ापे की वजह से निकाल दे, तो क्या होगा? स्कूलों में भाई–बहनों की फीसें माफ न हो, तो क्या होगा? आस–पड़ोस वाले उन्हें उस रहम–भरे प्यार से न देखें, तो क्या होगा? और खुद उसकी नौकरियाँ....?

दूध–डिपो के एरिया मैनेजर ने इसीलिए तो उसे काम दिया था कि पेसे की मदद हो जाएगी..... और उन्होंने बड़े उपकार के भाव से कहा था– "हरबंश लाल जी, जब तक आपकी लड़की को कहीं और सर्विस नहीं मिलती, दूध–डिपो पर भेज दिया कीजिए... मैं कुछ कर दूँगा. .... चालीस–पैंतालिस रुपये भी क्या बुरे हैं....।"

तब अजीब–सी चोट लगी थी..... और बगल के ओवर सियर साहब ने भी यह कहा था, "बाबू हरबंश लाल जी, सुनीता से कहिए.... दोनों बच्चों को पढ़ा दिया करे, बीस रुपये मैं दे दिया करूँगा...."[4]

आज आर्थिक संकट ने आम आदमी को इतना मजबूर कर दिया है कि उसे अपनी गरिमा और मानवीय अस्तित्व को भी साधारण–सी चीजों– एक प्याली चाय के मोल बेच देना पड़ता है। कमलेश्वर की कहानी 'गरमियों के दिन' के वैद्य जी चंद पैसों या चाय की एक प्याली के लिए नाटक करते हैं। वैद्य जी झूठ बोलते हैं, दूसरों को बेवकूफ बनाने की कोशिश करते हैं। उनकी जिन आर्थिक मजबूरियों के सन्दर्भ में यह सारी स्थिति निर्मित होती है। वैद्य जी दया और करुणा के पात्र लगते हैं। संक्रमण और परिवर्ततन के इस मोड़ कर वैद्य जी पीड़ायें पनपती हैं, जहाँ परिवर्तन की गति के साथ कदम मिला कर न वे खुद को बदल सकते हैं और न वे वैद्य रह सकते हैं ऐसे में एक व्यक्ति के रूप में अपने उस व्यक्तित्व को बचाये रखना असम्भव हो जाता है, जो मानवीय मूल्यों की रक्षा कर सके।

इसी क्रम में 'एक थी विमला' में जहाँ आर्थिक संकट से संपूर्ण करते व्यक्ति उस व्यक्ति तक पहुँच जाता है, जहाँ उसके लिए बच जाता है केवल निरर्थकता का बोधं आर्थिक संघर्ष की प्रक्रिया में उसे ऐसी–ऐसी स्थितियों से गुजरना पड़ता है, जहाँ से गुजरने के बाद जीवन की सार्थक स्थितियाँ उसके जीवन–दायरे से इतनी दूर चली जाती हैं कि उन्हें पकड़ पाना सम्भव नहीं हो पाता। इस प्रक्रिया में से गुजरते हुए वह संवेदना के उस धरातलों को व्यक्ति छू लेता है। जिसके बाद जीवन की किसी भी स्थिति में सार्थकता की अनुभूति नहीं हो पाती। फिर विवाह हो, धर्म–परिवर्तन हो या और कोई चीज हो। आर्थिक स्थिति का बयान कमलेश्वर ने 'एक थी विमला' में इस प्रकार किया है– "बहुत सकुचाते और हिचकते हुए कुंती ने मुसकराने की कोशिश की। उसके होठों पर मुसकराहट की लकीर खींच गई और वह नीची निगाह करके बोली "आज असल में हमें बीस रुपये की सख्त जरूरत थी, चीज तो कोई ला नहीं पाई... वह बात यह थी कि....."

बलवंत राय ने और कुछ जानना जरूरी भी नहीं समझा। कुन्ती के घर की हालत का पता उसे था और उसके मन में मदद करने की बात भी थी उसने फौरन बीस रुपये आगे बढ़ा दिए, तो बहुत संकोच से लेते हुए कुंती ने कहा "पहली तारीख को दे जाऊँगी....."[5]

'एक थी विमला' की विमला, कुंती, लाजो और सुनीता इसी प्रक्रिया में से गुजरती हुई अंत में निरर्थक होने की अनुभूति के भीषण कगार पर खड़ी है। 'जोखिम' तथा 'बयान' कहानियाँ इससे आगे भयाक्रान्तता का साक्षात्कार कराती है। यह कितनी बड़ी विसंगति है कि जिस आम आदमी की बुनियाद पर राष्ट्र में जनतंत्र की नींव पड़ती है वही आदमी जनतंत्र में इस प्रकार एकदम उपेक्षित और नगण्य बन गया है। उससे जुड़ी जनतंत्र की सच्चाई खुद उसकी जिन्दगी में व्यावहारिक और आर्थिक स्तर पर एकदम झूठ और मजाक बनकर रह गयी है। आज यदि कोई इस आजादी की सच्चाई के प्रति आस्था रखता है तो उसके लिए 'बयान' के फोटोग्राफर के समान जीना मुश्किल हो जाता है। या तो वह आत्महत्या कर ले या खुद को नकार दे। वह खुद को नकार नहीं सकता। उसके पास एक ही रास्ता है कि वह मृत्यु तक जिन्दा मरता रहे।

संदर्भ संकेत

[1] धर्मयुद्ध –यशपाल, पृ0 – 6
[2] स्मग्र कहानियाँ कमलेश्वर – पृ0 – 585–586
[3]समग्र कहानियाँ कमलेश्वर – पृ0 – 172
[4] समग्र कहानियाँ कमलेश्वर – पृ0 – 277
[5]समग्र कहानियाँ कमलेश्वर – पृ0 – 314